E-ISSN-2584-2870 DOI: https://doi.org/10.65833/dbs.2026.024

देवभूमि-सौरभम्
Devabhūmisaurabham

Vol 2 Issue 2 July-Dec 2025 Devabhūmisaurabham International Journal of CSU Shri Raghunath Kirti Campus Devprayag Uttarakhand India

श्रीमद्भगवद्गीता में पर्यावरण चेतना : एक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

डॉ० छबिलाल न्यौपाने
सहायक-प्राध्यापक (दर्शन)
नागार्जुन उमेश संस्कृत महाविद्यालय,
तरौनी, दरभंगा, बिहार – 847233
ईमेल संकेत – chhabilalneupane@hotmail.com
सम्पर्कसूत्र – 9560754554

सारांश (Abstract)

यह शोधपत्र श्रीमद्भगवद्गीता में निहित पर्यावरणीय दर्शन का व्यापक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। गीता में वर्णित अष्टधा प्रकृति, यज्ञ-दर्शन, त्रिगुण मॉडल, सृष्टि-चक्र, मानसिक पर्यावरण, और मानव-प्रकृति पारस्परिकता की अवधारणाएँ आधुनिक पर्यावरण विमर्श से आश्चर्यजनक साम्य रखती हैं।

गीता यह प्रतिपादित करती है कि **बाह्य पर्यावरण का संकट, मानव के "अन्तःकरण-पर्यावरण" के संकट का ही विस्तार है।** अतः पर्यावरण संरक्षण का आधार मानसिक संतुलन, सात्विक जीवनशैली, आवश्यकताओं का संयम, और प्रकृति को दिव्य सत्ता के रूप में देखने में निहित है।

कूटशब्द (Keywords)

अष्टधा प्रकृति, मानसिक पर्यावरण, यज्ञ, सात्त्विक जीवन, पारिस्थितिकी, त्रिगुण सिद्धान्त, पर्यावरणीय नैतिकता ।

प्रस्तावना (Introduction)

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, जैव-विविधता का क्षरण, पर्यावरण-असंतुलन तथा मानसिक तनाव मानव-संस्कृति के सामने भीषण चुनौती बनकर उभरे हैं। ऐसे समय में **श्रीमद्भगवद्गीता केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक, नैतिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक पर्यावरण-दर्शन का मूल स्रोत है।**

गीता प्रकृति को— **दिव्यता का प्रकट रूप, सृष्टि का सह-भागी, आत्मा के विकास का साधन,** तथा **मानव के नैतिक दायित्व का आधार** के रूप में वर्णित करती है। यह शोध गीता में निहित उन

पर्यावरणीय आयामों को स्पष्ट करता है, जो आधुनिक पारिस्थितिकी और पर्यावरण नैतिकता के मूल सिद्धांतों से गहराई से जुड़े हैं।

मुख्य विवेचना (Main Analysis)

1. अष्टधा प्रकृति : पर्यावरण का दार्शनिक आधार

गीता प्रकृति को 'माता' के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए कहती है कि वह सभी जीवधारियों को गर्भ में धारण करती है और पोषण करती है। गीता में "अष्टधा प्रकृति→ का वर्णन इस श्लोक में मिलता है:

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥[1]

भगवान श्रीकृष्ण स्वयं को पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश (पंचमहाभूत) के साथ-साथ मन, बुद्धि और अहंकार में भी व्याप्त बताते हैं। यह दर्शाता है कि गीता की दृष्टि में पर्यावरण केवल बाह्य भौतिक तत्वों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव की आंतरिक मनोदशा (मन, बुद्धि, अहंकार) से समन्वित एक समग्र तंत्र है। यह विचार आधुनिक पर्यावरण विज्ञान, **Environmental Psychology** और **Sustainability Studies** से मेल खाता है, जो मानते हैं कि मानवीय लालच और अहंकार जैसी मानसिक प्रवृत्तियाँ ही पर्यावरणीय असंतुलन का मूल कारण हैं।

2. मानसिक पर्यावरण : आधुनिक युग की सबसे बड़ी पर्यावरणीय समस्या

आज पर्यावरण प्रदूषण के मूल में लालच, लोभ, उपभोगवाद, क्रोध, हिंसा, असंयम, सांप्रदायिकता, मानसिक विक्षोभ और भय जैसे कारण हैं। गीता के अनुसार, ये सभी "मानसिक प्रदूषण" के विभिन्न रूप हैं।

गीता में कहा गया है— "इन्द्रियाणि मनसा नियम्य......"[2] अर्थात, मानसिक शुद्धि के बिना कर्म कलुषित होते हैं और समाज भी प्रदूषित होता है। इस प्रकार,

पर्यावरण सुधार = मानसिक शुद्धि + सात्विक प्रवृत्ति + संयमित जीवन ।

भौतिक पर्यावरण के असंतुलन का मूल कारण मानव मन की विकृत प्रवृत्तियाँ हैं। आज मानवता जिन समस्याओं – जैसे पर्यावरण-असंतुलन, आर्थिक संकट, सामाजिक अन्याय, सांप्रदायिकता, आतंकवाद – का सामना कर रही है, वे सब मानसिक रोगों को जन्म दे रही हैं। स्पष्ट है कि पर्यावरण प्रदूषण की प्रक्रिया हमारे "कलुषित मन" से ही उत्पन्न होती है।

इसका समाधान गीता चेतना के शुद्धिकरण में देती है:

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥"[3]

---

[1] **श्रीमद्भगवद्गीता 7.4**

[2] **श्रीमद्भगवद्गीता 3.7**

[3] **श्रीमद्भगवद्गीता 3.7**

अर्थात, जो व्यक्ति इंद्रियों को मन से नियंत्रित करके, आसक्ति रहित होकर कर्मयोग का आरंभ करता है, वह श्रेष्ठ है। इस प्रकार गीता "**असक्त कर्मयोग→** द्वारा मन की शुद्धि का मार्ग दिखाती है।

इस शुद्धि के लिए गीता आहार, आचार और विचार – इन तीनों में सात्विकता पर बल देती है। सत्रहवें अध्याय में आहार को सात्विक, राजसिक और तामसिक वर्गों में बाँटा गया है, यह स्पष्ट करते हुए कि हमारा शरीर और मन उसी आहार से निर्मित होता है जो हम ग्रहण करते हैं।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।।
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।।
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।[4]

इसी प्रकार, श्रद्धा को मनुष्य को उत्कृष्टता की ओर ले जाने वाली आंतरिक शक्ति के रूप में दर्शाया गया है।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।।[5]

अर्थात, जो व्यक्ति इंद्रियों को मन से नियंत्रित करके, आसक्ति रहित होकर कर्मयोग का आरंभ करता है, वह श्रेष्ठ है। इस प्रकार गीता "**असक्त कर्मयोग**" द्वारा मन की शुद्धि का मार्ग दिखाती है, जिससे कर्म भक्ति बन जाते हैं और सम्पूर्ण जीवन सात्विक हो जाता है।

निष्कर्षतः , गीता का सार यह है कि बाह्य पर्यावरण की सुरक्षा तभी संभव है जब हम अपने आंतरिक मानसिक पर्यावरण को शुद्ध करें। इसके लिए आवश्यक है कि हम:

- अपनी आवश्यकताओं पर संयम रखें

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।[6]

अर्थ - *मानसिक पर्यावरण की शुद्धि हेतु आवश्यकताओं पर संयम रखने वाला वही योगी सफल होता है जो न अधिक खाता है, न बिलकुल उपवास करता है, न अत्यधिक सोता है और न ही बिल्कुल न सोता है।*

- जीवन में संतुलन स्थापित करें, तथा
- प्रकृति के प्रति श्रद्धा, कृतज्ञता और संवेदना का भाव विकसित करें।

व्यावहारिक अनुप्रयोग:

---

[4] **श्रीमद्भगवद्गीता 17.7-10**
[5] **श्रीमद्भगवद्गीता 17.3**
[6] **श्रीमद्भगवद्गीता 6.16**

- सात्विक आहार: सत्रहवें अध्याय के अनुसार आहार का चयन। (गीता 17.7-10)
- संतुलित जीवनशैली: आहार-विहार में संतुलन। (गीता 6.16)
- श्रद्धा का विकास: चरित्र निर्माण में श्रद्धा की भूमिका।(गीता 17.3)

3. यज्ञ : मानव-प्रकृति के पारस्परिक संतुलन का शाश्वत सिद्धांत

पूर्ण "इकोलॉजिकल साइकिल" -

- प्राकृतिक शक्तियाँ = **देवता**
- मनुष्य का कर्तव्य = **यज्ञ (निस्वार्थ, संयमित, पर्यावरणोन्मुख कर्म)**
- वर्षा = **यज्ञ का फल**
- अन्न = **वर्षा का फल**
- जीवन = **अन्न का फल**

भगवद्गीता में **'यज्ञ'** की अवधारणा एक सार्वभौमिक पारिस्थितिकी दर्शन **(Ecological Philosophy)** प्रस्तुत करती है, जो मानव और प्रकृति के बीच पारस्परिकता एवं सहअस्तित्व पर आधारित है। गीता के तृतीय अध्याय (3.10–16) में वर्णित **'सृष्टि-चक्र' (Ecological Cycle)** इसी दर्शन की आधारशिला है।

इस चक्र के अनुसार, सृष्टि के आदि में प्रजापति ब्रह्मा ने मनुष्य को यज्ञ (निस्वार्थ कर्तव्य-कर्म) का विधान दिया, ताकि वह प्राकृतिक शक्तियों (देवताओं) के साथ सहयोग से सृष्टि का संवर्धन करे। जब मनुष्य अपने कर्मों से इन प्राकृतिक तत्वों का पोषण करता है, तो वे (वायु, जल, अग्नि आदि) बदले में वर्षा, अन्न और जीवनदायी संसाधन प्रदान करके उसका पोषण करते हैं। इस प्रकार, यह एक सतत् पारिस्थितिक चक्र बनता है।

गीता इस सिद्धांत को एक प्रसिद्ध श्लोक में स्पष्ट करती है:

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तान्प्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥[7]

अर्थात, यज्ञ द्वारा तृप्त देवता मनुष्यों को भोग्य पदार्थ देते हैं। परंतु जो व्यक्ति बिना कुछ लौटाए केवल उपभोग करता है, वह 'चोर' (स्तेन) के समान है।

यह दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरणीय सिद्धांतों जैसे सर्कुलर इकोनॉमी **(Circular Economy)** और टिकाऊ सहयोग **(Sustainable Cooperation)** का पूर्वानुमान करता है। यह एक ऐसा तंत्र स्थापित करता है जहाँ 'लेना' और 'देना' संतुलित हो। भगवान कृष्ण स्वयं इस कर्तव्य-चक्र की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहते हैं— **"उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्"**[8] — अर्थात, यदि मैं कर्म न करूँ तो यह समस्त लोक-व्यवस्था नष्ट हो जाए।

निष्कर्षतः, गीता का यज्ञ-दर्शन मनुष्य को प्रकृति का महज उपभोक्ता नहीं, बल्कि एक **सहभागी (Co-participant)** और **संरक्षक (Custodian)** बनने का आह्वान करता है। यह चक्र

---

[7] श्रीमद्भगवद्गीता 3.12

[8] श्रीमद्भगवद्गीता 3.24

केवल भौतिक ही नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक सत्य भी है, जहाँ प्रकृति, मनुष्य और परमात्मा एक दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। इस पवित्र चक्र में बाधा डालना ही समस्त पर्यावरणीय एवं आध्यात्मिक संकटों का मूल कारण है।

4. सृष्टि की एकता और पारिस्थितिक अन्तर्संबंध

भगवद्‌गीता ब्रह्मांडीय एकता और अंतर्संबंध का एक शक्तिशाली दार्शनिक आधार प्रस्तुत करती है। इसका प्रसिद्ध उपमान — **"मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।"**[9] — यह स्पष्ट करता है कि समस्त जगत परम सत्ता में उसी प्रकार गुँथा है, जैसे मोतियों की माला एक ही धागे में पिरोई होती है।

यह दृष्टिकोण आधुनिक पारिस्थितिकी की अवधारणाओं जैसे बायोस्फीयर, इकोसिस्टम, अंतर्निर्भरता और पारिस्थितिक संतुलन का दार्शनिक आधार है। गीता के दशम अध्याय में इस एकत्व को और स्पष्ट किया गया है, जहाँ भगवान श्रीकृष्ण स्वयं को वृक्षों में पीपल, नदियों में गंगा, ऋतुओं में वसंत और पर्वतों में हिमालय के रूप में प्रकट करते हैं।[10]

इन विहित रूपों के माध्यम से गीता यह प्रतिपादित करती है कि समस्त प्रकृति ईश्वर की दिव्य अभिव्यक्ति है। इसलिए, प्रकृति का सम्मान वस्तुतः ईश्वर के प्रति आदर का ही रूप है। जब मनुष्य प्रकृति में इस सर्वव्यापी दिव्यता का अनुभव करता है, तब उसका उपभोग-आधारित दृष्टिकोण स्वतः ही संरक्षण, संतुलन और संवेदनशीलता में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार, गीता का यह दर्शन आधुनिक पर्यावरणीय नैतिकता के लिए एक गहन और प्रासंगिक आधार प्रदान करता है।

5. त्रिगुणात्मक दृष्टिकोण और पारिस्थितिकी

- सत्त्व = **संरक्षण, संयम, संतुलन**
- रजस् = **उपभोग, भाग-दौड़, असंतोष**
- तमस् = **विनाश, उपेक्षा, अज्ञान**
- ग्रीन व्यवहार **(स्थिरता) सत्त्वगुण से उत्पन्न होता है।**
- दूषित पर्यावरण = **राजसिक + तामसिक प्रवृत्तियों का परिणाम।**

भगवद्‌गीता का त्रिगुण-सिद्धांत (सत्त्व, रजस् और तमस्) मानव के पर्यावरणीय आचरण को समझने का एक गहन ढाँचा प्रदान करता है। यह सिद्धांत बताता है कि मनुष्य का संसाधन-उपयोग और पर्यावरण के प्रति उत्तरदायित्व उसके भीतर सक्रिय प्रमुख गुण से निर्धारित होता है।

सत्त्व गुण संतुलन, संयम और संरक्षण को जन्म देता है। यह प्रवृत्ति मनुष्य को प्रकृति के साथ सहयोगपूर्ण और सम्मानजनक व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है, जो **सतत् विकास (Sustainability)** का आधार है।

---

[9] **श्रीमद्भगवद्‌गीता 7.7**

[10] **श्रीमद्भगवद्‌गीता 7.8–10**

इसके विपरीत, **रजस् गुण** असंतोष, अति-उपभोग और अंधाधुंध विकास की ओर प्रवृत्त करता है, जबकि **तमस् गुण** उपेक्षा, अज्ञान और विनाशकारी व्यवहार को बढ़ावा देता है। दूषित पर्यावरण मूलतः इन्हीं राजसिक एवं तामसिक प्रवृत्तियों का परिणाम है।

गीता इसके परिणामों को स्पष्ट करती हुई कहती है:

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।[11]

यह श्लोक केवल आध्यात्मिक स्तर का सूचक नहीं है, बल्कि पर्यावरणीय आचरण के संभावित परिणामों का रूपक भी है। सात्त्विक दृष्टि स्थायित्व की ओर ले जाती है, जबकि राजसिक और तामसिक प्रवृत्तियाँ क्रमशः असंतुलन और ह्रास को जन्म देती हैं।

इस प्रकार, गीता का त्रिगुण-सिद्धांत सस्टेनेबल बनाम अन-सस्टेनेबल बिहेवियर के आधुनिक सिद्धांत से गहरा सामंजस्य रखता है और संकेत देता है कि पर्यावरण-संकट का स्थायी समाधान केवल तकनीकी उपायों में नहीं, बल्कि मानवीय चेतना के गुणात्मक परिवर्तन में निहित है।

6. श्रीकृष्ण का जीवन: पर्यावरण नैतिकता का आदर्श मॉडल

कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन सह-अस्तित्व (Co-existence) और प्रकृति-संरक्षण का प्रतिमान

- **यमुना-शुद्धि → जल-पर्यावरण**
- **गोवर्धन-धारण → पर्वत, वर्षा, पशुपालक संस्कृति**
- **दावानल-शमन → वन संरक्षण**
- **गोप-गोपियों के साथ सह-अस्तित्व → जैव-विविधता**

भारतीय परंपरा में श्रीकृष्ण का जीवन पर्यावरण संरक्षण के एक व्यावहारिक एवं समग्र मॉडल के रूप में प्रस्तुत होता है। उनके जीवन प्रसंग प्रकृति के विभिन्न तत्वों—जल, पर्वत, वन और जीव—के प्रति गहरी संवेदनशीलता और सक्रिय संरक्षण-भावना को दर्शाते हैं।

यमुना-शुद्धि[12] का प्रसंग केवल एक चमत्कार नहीं, बल्कि **जल-पर्यावरण** के शुद्धिकरण का प्रतीक है, जो आधुनिक जल-प्रबंधन के सिद्धांतों के अनुरूप है। **गोवर्धन-धारण**[13] की घटना केवल पर्वत उठाने तक सीमित नहीं, बल्कि **पर्वत, वर्षा और पशुपालक संस्कृति** के एकीकृत संरक्षण का उदाहरण है, जो एक समन्वित पारिस्थितिकी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है।

---

[11] श्रीमद्भगवद्गीता 14.18

[12] विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ।
तस्या विशुद्धमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत् ।। श्रीमद्भागवतमहापुराण 10.16.1
भागवत पुराण, दसम स्कन्ध, अध्याय 16–17: कालिय-दमन प्रसंग—यमुना नदी का विषहरण और जलीय पर्यावरण की रक्षा।

[13] भागवत पुराण, दसम स्कन्ध, अध्याय 25: गोवर्धन-धारण—प्राकृतिक आपदा से पर्यावरण एवं पशु-धन की रक्षा का विवरण।

इसी कड़ी में, **दावानल-शमन**[14] **वन संरक्षण** के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। साथ ही, **गोप-गोपियों** के साथ उनका सहजीवन **जैव-विविधता** और **सह-अस्तित्व (Co-existence)** के सिद्धांत का जीवंत चित्रण करता है।

इन सभी घटनाओं का सार यह है कि श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व और सक्रिय संरक्षण का प्रतिमान स्थापित करता है। यह दृष्टिकोण पर्यावरणीय नैतिकता **(Environmental Ethics)** को केवल एक भौतिक दायित्व नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक चेतना का अंग बनाता है, जो आज के वैश्विक पर्यावरणीय संकट में अत्यधिक प्रासंगिक है।

7. ब्रह्मांडीय एकता और पारिस्थितिक संतुलन में दिव्यता का दर्शन

भगवद्गीता एक दिव्य पारिस्थितिक मॉडल प्रस्तुत करती है जो ब्रह्मांडीय एकता और प्राकृतिक संतुलन में अंतर्निहित दिव्य उपस्थिति को प्रकट करती है। पंद्रहवें अध्याय के श्लोक इस संकल्पना को स्पष्ट करते हैं:

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥[15]

यह श्लोक प्रकट करता है कि सूर्य, चंद्रमा और अग्नि में व्याप्त तेज वास्तव में परम सत्ता का ही प्रकाश है। इस दृष्टि में:

- **सूर्य** = समस्त ऊर्जा का मूल स्रोत
- **चंद्रमा** = रसात्मक तत्व, वनस्पति पोषण
- **अग्नि** = रूपांतरण और जीवन-शक्ति

अगला श्लोक इस चक्र को और विस्तार देता है:

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥[16]

इसमें चंद्र-तत्व द्वारा सभी औषधियों के पोषण का वर्णन है, जो आधुनिक **वनस्पति विज्ञान** और **प्रकाश संश्लेषण** की अवधारणाओं के अनुरूप है।

गीता का यह दर्शन प्राकृतिक घटनाओं को केवल भौतिक प्रक्रियाएँ नहीं, बल्कि एक उच्चतर चेतना की व्यवस्थित अभिव्यक्तियाँ मानता है। यह दृष्टिकोण **ऊर्जा-प्रवाह (energy flow)** और **जैव-भौतिक चक्रों (biogeochemical cycles)** की आधुनिक पारिस्थितिकी अवधारणाओं का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करती है, जो प्रकृति के प्रति श्रद्धा, संरक्षण और उत्तरदायित्व की भावना को जन्म देती है।

---

[14] **भागवत पुराण, दसम स्कन्ध, अध्याय 19: दावानल-लीला—वनाग्नि से पारिस्थितिक तंत्र एवं पशुधन की रक्षा का प्रसंग।**

[15] **श्रीमद्भगवद्गीता 15.12**

[16] **श्रीमद्भगवद्गीता 15.13**

8. उपभोगवाद की आलोचना एवं सात्त्विक जीवनशैली: पर्यावरणीय संरक्षण का संदेश

गीता 'तामसिक' आचरण के रूप में अत्यधिक उपभोग और लालच की आलोचना करते हुए 'सात्त्विक' जीवनशैली को प्रोत्साहित करती है। यह दृष्टिकोण विशेष रूप से सत्रहवें अध्याय में **सात्त्विक आहार** के माध्यम से स्पष्ट होता है, जो:

- **अल्प संसाधन उपयोग**
- **सरल उत्पादन प्रक्रिया**
- **न्यूनतम प्रदूषण**

पर आधारित है।

इसके विपरीत, राजसिक-तामसिक आहार अधिक उद्योग, अधिक प्रदूषण और प्रकृति के अंधाधुंध दोहन को जन्म देता है। इस प्रकार गीता का सत्रहवाँ अध्याय भोजन की प्रकृति को पर्यावरण नैतिकता से जोड़कर आज की उपभोगवादी संस्कृति के विरुद्ध एक मजबूत चेतावनी प्रस्तुत करता है, जो पर्यावरणीय असंतुलन का प्रमुख कारण बनी हुई है।

9. पर्यावरणीय संकट का मूल कारण एवं गीता का समाधान

गीता के अनुसार, पर्यावरणीय संकट का मूल कारण प्रकृति के त्रिगुणात्मक सिद्धांत (सत, रज, तम) के साथ असंतुलन में निहित है। जब मनुष्य अहंकारवश स्वयं को कर्ता मानकर इन नियमों के विरुद्ध कार्य करता है, तो यह असंतुलन तीन स्तरों पर प्रकट होता है:

- **मानसिक प्रदूषण (आंतरिक अशांति)**
- **आचरण-आधारित प्रदूषण (दोषपूर्ण व्यवहार)**
- **सामाजिक-आर्थिक प्रदूषण (व्यवस्थागत विकृति)**

इस संकट के समाधान हेतु गीता एक समग्र मार्गदर्शन प्रदान करती है:

- **संयम** और **संतुलन** द्वारा जीवनशैली का नियमन
- **निस्वार्थ कर्म** द्वारा आचरण की शुद्धि
- **यज्ञात्मक दृष्टि** द्वारा प्रकृति के साथ सहयोग
- **श्रद्धा** और **कृतज्ञता** द्वारा प्रकृति के प्रति सम्मान का भाव

इस प्रकार गीता का संदेश स्पष्ट है: मनुष्य को प्रकृति की शक्तियों का दास नहीं, बल्कि एक ज्ञानी सहयोगी बनना चाहिए।

निष्कर्ष (Conclusion)

श्रीमद्भगवद्गीता पर्यावरण चेतना का एक सुव्यवस्थित दार्शनिक एवं वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करती है, जिसकी मौलिक प्रतिपादन यह है कि **बाह्य पारिस्थितिकी संकट वास्तव में आंतरिक मानसिक संकट का ही विस्तार है।** गीता स्पष्ट करती है कि पर्यावरणीय असंतुलन मानव की विकृत मानसिक प्रवृत्तियों—अहंकार, लोभ, असंयम और उपभोगवाद—का सीधा परिणाम है।

गीता में वर्णित 'अष्टधा प्रकृति' का सिद्धांत, 'सूत्र में गुँथे मणि' की अवधारणा, त्रिगुणात्मक दृष्टिकोण, यज्ञ-आधारित पारिस्थितिक चक्र, तथा श्रीकृष्ण का व्यावहारिक जीवन—ये सभी तत्व मिलकर एक **समग्र पर्यावरण दर्शन** का निर्माण करते हैं। यह दर्शन इस सत्य को उजागर करता है कि प्रकृति केवल भौतिक संसाधन नहीं, बल्कि दिव्य सत्ता की अभिव्यक्ति और मानव जीवन का अविभाज्य सहचर है।

तृतीय अध्याय में वर्णित **यज्ञ-चक्र** पारस्परिकता, सहयोग और पुनर्पोषण का ऐसा मॉडल प्रस्तुत करता है जो आधुनिक **सर्कुलर इकोनॉमी** और **सतत् विकास** के वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुरूप है। इसी प्रकार, **त्रिगुण-सिद्धांत** स्पष्ट करता है कि सत्त्वगुणी व्यवहार ही टिकाऊ पर्यावरणीय प्रथाओं का आधार है।

निष्कर्षतः, गीता का पर्यावरण-दर्शन यह स्थापित करता है कि पर्यावरण-संकट का स्थायी समाधान केवल तकनीकी उपायों में नहीं, बल्कि **मानवीय चेतना के गुणात्मक परिवर्तन** में निहित है। **सात्त्विक जीवन, संयमित उपभोग, प्रकृति के प्रति श्रद्धा, निस्वार्थ कर्म और यज्ञात्मक दृष्टि—** ये गीता प्रदत्त वे मार्ग हैं जो मनुष्य को प्रकृति का उपभोक्ता नहीं, बल्कि **सहभागी और संरक्षक** बनने की प्रेरणा देते हैं।

वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान हेतु गीता के इस संदेश को आत्मसात करना एक सार्थक और सतत मार्ग प्रशस्त कर सकता है। यह हमें प्रकृति के साथ सहअस्तित्वपूर्ण जीवनशैली की ओर मार्गदर्शन करता है, जहाँ मानसिक पर्यावरण का शुद्धिकरण भौतिक पर्यावरण के संरक्षण की अनिवार्य पूर्वशर्त है।

सन्दर्भग्रन्थसूची (Works Cited)

प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)

1. *श्रीमद्भगवद्गीता.* अनुवादक: स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस, 2022.
2. *श्रीमद्भागवत महापुराण.* अनुवादक: हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, 2021.
3. ऋग्वेद संहिता. संपादक: डॉ. रामगोविंद त्रिपाठी, चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2019.

द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

4. आत्मानन्द, स्वामी. *गीतातत्त्व-चिन्तन.* स्वामी शुद्धिदानन्द, अद्वैत आश्रम, 2000.
5. पाण्डेय, ए. के.. *भारतीय दर्शन में पर्यावरण चेतना.* हिन्दुस्तानी एकेडेमी, 2011.
6. बिश्नोई, किशनाराम. *धर्म और पर्यावरण.* गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, 2009.
7. शर्मा, प्रा.श्री दुर्गेश कुमार, अनुवादक. *भगवद्गीता - का सार्वजनीन सन्देश.* रामकृष्ण मठ, 2018.
8. Dua, K. K. *Bhagavad Gita and Environment.* Rishi Publication, 1999.